223hi21

21

भारतीय संस्कृति का विदेश में प्रसार

आजकल लोग बहुत अधिक यात्राएँ करते हैं। ये सड़क, वायु, समुद्र, रेल अथवा किसी भी अन्य मार्ग से जाते हैं। पर क्या आप जानते हैं कि लोग उस समय भी दूर-दूर यात्राएँ करते थे जब भारत में कोई ट्रेन नहीं होती थी, न कोई वायुयान। प्राय: तीन सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य से भारत बाह्य विश्व से व्यापारिक स्तर पर संपर्क में रहा है जबकि भारत तीन ओर से समुद्र से घिरा है और इसके उत्तर में हिमालय पर्वतश्रेणी है। लेकिन ये विश्व के अन्य देशों से भारत के नजदीकी संबंध बनाने में कभी बाधक नहीं बने। भारतीय लोगों ने सुदूर देशों की यात्राएं की और वे जहां भी गए, वहां उन्होंने भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी। इसके साथ, ये सुदूर देशों के विचार, प्रभाव, रीति-रिवाज और परंपराओं को भी साथ ले आये। तथापि इस संदर्भ में सबसे बड़ी विलक्षणता यह थी कि इससे भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रसार विश्व के विभिन्न भागों में हुआ, विशेषरूप से मध्य एशिया, दक्षिणपूर्व एशिया, चीन, जापान, कोरिया आदि में। इस प्रसार की सर्वाधिक विलक्षणता यह है कि इस प्रचार का उद्देश्य किसी समाज या व्यक्ति को जीतना था डराना नहीं बल्कि भारत की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को स्वेच्छा से स्वीकार करवाना था। हम इस पाठ में देखेंगे कि भारतीय संस्कृति का दूसरे देशों में कैसे प्रसार हुआ और उन पर क्या प्रभाव हुआ।

यह पाठ आपको एक अन्य सुन्दर विचार भी देगा कि अन्य देशों से, अन्य समाजों से, अन्य धर्मों से तथा अन्य संस्कृतियों से शान्तिपूर्ण मित्रता हमारे जीवन को जीवन्त और अधिक सार्थक बनाते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:–

- जिन माध्यमों से भारतीय संस्कृति दूसरे देशों में फैली; उनको स्पष्ट कर सकेंगे;
- जिन व्यापारिक मार्गों से भारतीय व्यापारी दूसरे देशों में गए और भारतीय संस्कृति के प्रसार के पहले सांस्कृतिक दूत बने, उनको चिह्नित कर सकेंगे;
- दूसरे देशों में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में प्राचीन विश्वविद्यालय, अध्यापकों और धर्मप्रचारकों ने जो भूमिका निभाई, उसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- भारतीय संस्कृति कैसे पूर्व एशिया और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में फैली, इसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- रोम-साम्राज्य से भारत के व्यापारिक संबंधों का वर्णन कर सकेंगे;
- बौद्ध धर्म का शांति-संस्थापक धर्म के रूप में दूसरे देशों में प्रसार-प्रचार किस प्रकार हुआ, इस पर विचार कर सकेंगे;
- विभिन्न देशों की भाषाओं और साहित्य पर संस्कृत भाषा के प्रभाव की समीक्षा कर सकेंगे;
- भारतीय दर्शन, भारतीय प्रशासन एवं कानून तथा भारतीय महाकाव्यों की इन देशों में प्रसिद्धि का वर्णन कर सकेंगे;
- इन देशों के विभिन्न विशाल मंदिरों, मूर्तियों और चित्रों के रूप में कई शताब्दियों के दौरान निर्मित और संरक्षित विरासत का उल्लेख कर सकेंगे; तथा
- अरब सभ्यता के साथ भारत की सांस्कृतिक अन्त:क्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

21.1 व्यापारियों, शिक्षकों, राजदूतों और धर्म प्रचारकों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रसार

प्राचीन काल में भारतीय व्यापारी व्यापार के नए अवसरों की खोज में अनेक देशों में गए थे। वे पश्चिम में रोम तक और समुद्री मार्गों से होते हुए पूर्व में चीन तक पहुंचे थे। हमारे देश के व्यापारी सोने की खोज में प्रथम शताब्दी में इण्डोनेशिया और कम्बोडिया आदि देशों में गए। उनकी जावा, सुमात्रा तथा मलाया द्वीपों की यात्राओं के विशेष वर्णन मिलते हैं। यही कारण है कि इन क्षेत्रों को प्राचीन काल में 'सुवर्ण द्वीप' कहा गया था। सुवर्ण का अर्थ 'सोना' और द्वीप मिलकर बना 'सोने का द्वीप'। वास्तव में व्यापारियों ने संस्कृति-दूत की भूमिका निभायी। तथा बाहरी दुनिया के देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किये। ईसा-पूर्व पहली शताब्दी में व्यापारी उज्जैन, मथुरा, काशी, प्रयाग, पाटलीपुत्र आदि नगरों से और पूर्वी तट के मामल्लपुरम्, ताम्रलिप्ति, कटक, पुरी, रामेश्वरम् तथा कावेरीपत्तनम् से

विदेश के लिए चलते थे। सम्राट अशोक के काल में कलिंग राज्य का श्रीलंका के साथ व्यापारिक संबंध था। जहां कहीं भी व्यापारी गए वहीं उनके सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो गए थे। इस प्रकार व्यापारियों ने सांस्कृतिक राजदूतों की भूमिका का निर्वाह किया और बाहरी दुनिया से व्यापारिक सम्बन्ध बनाए।

पूर्वी तट के समान ही पश्चिमी तट पर भी अनेक सांस्कृतिक स्थल बने। इनमें अजन्ता, एलोरा, कार्ले, भाजा, कन्हेरी आदि का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इनमें से ज्यादातर केन्द्रों पर बौद्ध धार्मिक मठ हैं।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान में यहां के प्राचीन विश्वविद्यालयों की भूमिका सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही है। इन्होंने बड़ी संख्या में विद्वानों और छात्रों को आकर्षित किया। विदेश से आने वाले विद्वान अक्सर नालंदा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जाते थे। कहा जाता है कि यह विश्वविद्यालय सात मंजिला था। इन विश्वविद्यालयों के शिक्षक और छात्र धर्म और विद्या के साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी विदेश में ले गये। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन-सांग ने भारत के उन सभी विश्वविद्यालयों का विस्तार से वर्णन किया है जिनमें वह गए अथवा जहां रह कर इन्होंने अध्ययन किया। उदाहरण के लिए, इनमें से दो विश्वविद्यालयों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है—पूर्व में नालंदा ओर पश्चिम में वल्लभी।

गंगा के पूर्वी तट पर एक अन्य विश्वविद्यालय था—विक्रमशिला। तिब्बती विद्वान् तारानाथ ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। यहां के शिक्षक और विद्वान तिब्बत में इतने प्रसिद्ध थे कि कहा जाता है एक बार तिब्बत के राजा ने इस विश्वविद्यालय के प्रधान को तिब्बत में आमंत्रित करने के लिए दूत भेजे थे ताकि स्वदेशी ज्ञान ओर जन-सामान्य की संस्कृति में रुचि जगाई जा सके।

बिहार में एक अन्य प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था—ओदन्तपुरी। पालवंश के राजाओं के संरक्षण में इसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। इस विश्वविद्यालय से बहुत सारे बौद्ध भिक्षु तिब्बत में जाकर बस गए थे।

सन् 67 ईसवी में चीनी सम्राट के निमंत्रण पर सबसे पहले जो दो भारतीय आचार्य चीन गए उनके नाम है—काश्यप मांतग और धर्मरक्षित। इसके बाद लगातार नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला और ओदन्तपुरी आदि विश्वविद्यालयों के शिक्षकों ने उनका अनुसरण किया। जब आचार्य कुमारजीव चीन पहुंचे तो चीनी सम्राट ने उनसे संस्कृत ग्रंथों को चीनी में अनूदित करने के लिए अनुरोध किया। एक अन्य आचार्य बोधिधर्म थे। जो योगदर्शन के विशेषज्ञ माने जाते थे। इनको चीन और जापान में अभी भी सम्मान प्राप्त है।

नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य कमलशील को तिब्बत के राजा ने निमंत्रित किया था। उनकी मृत्यु के बाद उनके शरीर पर विशेष लेप लगा कर उसे ल्हासा के विहार में सुरक्षित रखा गया था।

ज्ञानभद्र, एक अन्य प्रकांड विद्वान थे। वे अपने दोनों बेटों के साथ धर्म प्रचार के लिए

तिब्बत गये। बिहार के ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय के समान तिब्बत में एक नये बौद्ध विहार की स्थापना की गई थी।

आचार्य अतीश विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रधान थे। उन्हें दीपंकर श्रीज्ञान के नाम से भी जाना जाता था। वे ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत गये और वहां बौद्ध धर्म की सशक्त नींव डाली। थोनमी संभोता एक तिब्बती मंत्री था जो चीनी यात्री ह्वेनसांग के नालंदा आगमन के समय, नालंदा विश्वविद्यालय का छात्र था। यहां से अध्ययन के बाद वह तिब्बत लौटा और वहां उसने बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया। तिब्बतियों की बड़ी संख्या ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया यहां तक कि तिब्बत का राजा भी बौद्ध बन गया था। उसने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया था। प्रसिद्ध शिक्षकों में से एक कुमारजीव 5वीं शताब्दी में सक्रिय थे।

21.2 अन्य माध्यमों से भारतीय संस्कृति का प्रसार

रोम या जिप्सी

बहुत से भारतीय घूमते-घूमते संसार के अनेक देशों में पहुंचे। वे स्वयं को रोम कहते थे और उनकी भाषा रोमानी थी, परन्तु यूरोप में उन्हें जिप्सी कहा जाता था। वे वर्तमान समय के पाकिस्तान और अफगानिस्तान आदि को पार कर पश्चिम की ओर निकल गये थे। वहां से, ईरान और ईराक होते हुए वे तुर्की पहुंचे। फारस, तौरस की पहाड़ी और कुस्तुन्तुनिया होते हुए वे यूरोप के अनेक देशों में फैल गये। आज वे ग्रीस, बुल्गारिया, रूमानिया, पूर्व यूगोस्लाविया के राज्यों, पोलैंड, स्विट्ज़रलैंड, फ्रांस, स्वीडन, चेकोस्लोवाकिया, रूस, हंगरी और इंग्लैंड में बसे हुए हैं। इस पूरी यात्रा में उन्हें लगभग चार सौ वर्ष का समय लगा। इस अवधि में वे लोग यह तो भूल गये कि वे कहां के निवासी हैं परन्तु उन्होंने अपनी भाषा, रहन-सहन के ढंग, रीति-रिवाज और व्यवसाय आदि को नहीं छोड़ा।

रोम लोगों को उनके नृत्य और संगीत के लिए जाना जाता है। कहा जाता है कि हर एक रोम गायक और अद्भुत कलाकार होता है।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. हमारी संस्कृति का विदेश में किसने प्रसार किया?

   ....

2. चीनी तीर्थयात्री ह्यूनसांग ने कौन से दो विश्वविद्यालयों में यात्रा की?

   ....

3. विक्रमशिला विश्वविद्यालय का किस तिब्बती आचार्य ने वर्णन किया है?

   ....

4. सन् 67 ई. के दौरान किन दो आचार्यों ने चीन की यात्रा की?

....

5. आचार्य कुमारजीव चीन क्यों गए थे?

....

6. प्राचीन काल में जिप्सी कौन थे?

....

21.3 मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति

ई. पूर्व में दूसरी शताब्दी से भारत ने चीन, सैन्ट्रल एशिया, वेस्ट एशिया और रोमन साम्राज्य के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाए थे। मध्य एशिया तिब्बत, भारत, अफगानिस्तान, चीन, रूस और मंगोलिया से घिरा हुआ क्षेत्र है। चीन से आने-जाने वाले व्यापारियों को बहुत कठिनाइयों के बावजूद इस क्षेत्र से होकर जाना पड़ता था। जो मार्ग उन्होंने बनाया वह आगे चलकर (सिल्क रूट) 'रेशम-मार्ग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसे इस नाम से इसलिए बुलाया जाने लगा क्योंकि चीन से रेशम का व्यापार किया जाता था। आगे चलकर चीन आने जाने वाले विद्वानों, भिक्षुओं, आचार्यों और धर्माचार्यों आदि ने इसी मार्ग का प्रयोग किया। इस मार्ग ने उस समय के परिचित विश्व में संस्कृतियों के प्रचार-प्रसार में एक महान श्रृंखला का कार्य किया। भारतीय संस्कृति का प्रभाव मध्य एशिया में भी दृढ़ता से अनुभव किया गया।

मध्य एशिया के साम्राज्यों में कुची एक ऐसा राज्य था जहां भारतीय संस्कृति अपने पूर्व वैभव पर थी। इस साम्राज्य से रेशम मार्ग दो भागों में बंट जाता है और चीन में डुन हुवांग की गुफाओं पर जाकर ये मार्ग पुनः मिल जाते हैं। इस तरह एक उत्तरी 'रेशम-मार्ग' था तथा दूसरा, दक्षिणी रेशम-मार्ग। उत्तरी रेशम मार्ग समरकंद, काशगढ़, तुम्शुक, आक्सु कारा शहर, तुर्फान और हामी से होकर गुजरता था और दक्षिणी रेशम मार्ग यारकन्द, खोतान, केरिया, चेरचेन और मीरान से होकर जाता था। ज्ञान की खोज में और बौद्ध दर्शन का प्रचार करने के लिए अनेक चीनी और भारतीय विद्वान इन मार्गो से गये।

भारत और मध्य एशिया के देशों के बीच जो सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ, उसका प्रमाण इन सभी देशों में प्राप्त प्राचीन स्तूपों, मन्दिरों, मठों, मूर्तियों और चित्रों से प्राप्त होता है।

इस मार्ग पर कई स्थान है जहाँ भिक्षु और धर्माचार्य, व्यापारी और तीर्थयात्री सभी यात्रा के बीच में रुका करते थे। ये आगे चलकर बौद्ध शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बने। यहीं से होकर रेशम के साथ-साथ जेड नामक बहुमूल्य पत्थर, घोड़े तथा अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का व्यापार हुआ करता था। परन्तु इस मार्ग से होकर जाने वाला सबसे अधिक प्रभावशाली तत्त्व था-बौद्ध धर्म। अतः कहा जा सकता है कि इस व्यापार मार्ग से धर्म और दर्शन का आस्था

और विश्वास का, भाषा और साहित्य का कला और संस्कृति का प्रसार हुआ। खोतान एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। यह दक्षिणी रेशम मार्ग पर स्थित था।

भारत के साथ इसके संबंधों का इतिहास दो हजार वर्ष पुराना है। मरुभूमि के बीच हरी-भरी धरती पर बसा यह खोतान राज्य रेशमी कपड़ा उद्योग, नृत्य और संगीत, साहित्यिक और व्यापारिक गतिविधियों और सोने तथा जेड के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

इतिहास में, भारत और खोतान के बीच संबंध का एक प्रमाण यह है कि भिक्षुओं और शिक्षकों का आवागमन निरंतर चलता रहा। वहां से प्राप्त पहली शताब्दी के सिक्कों पर एक ओर चीनी भाषा में लिखा हुआ है तो दूसरी ओर प्राकृत भाषा में खरोष्टी लिपि में। यह खोतान की मिश्रित संस्कृति को प्रमाणित करता है। यहां रेत के अन्दर दबे मठों की खुदाई करने पर बड़ी संख्या में संस्कृत में बौद्ध दर्शन की पाण्डुलिपियां, उनके लिप्यन्तर और अनुवाद उपलब्ध हुए हैं।

21.4 पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति

चीन

भारत और चीन के आपसी सम्पर्क दूसरी शताब्दी इसवी में आरम्भ हुए। भारतीय संस्कृति ने सर्वप्रथम दो भारतीय आचार्यो-धर्मरक्षित और कश्यप मांतग के माध्यम से चीन में प्रवेश किया जो चीनी सम्राट मिंग ति के निमंत्रण पर सन् 67 में चीन गए थे।

आचार्य-धर्मरक्षित और कश्यप मातंग के पश्चात् चीन और भारत के बीच विद्वानों का आना-जाना निरंतर निर्बाध गति से चलता रहा। चीनी बहुत ही सभ्य लोग थे। उन सभी ने बुद्ध की भावपूर्ण कहानियों को बहुत ध्यान से सुना। जो भी चीनी यात्री ज्ञान की खोज में भारत आये, उन्होंने अपने यात्रा वृतान्त में भारत और भारतीय संस्कृति की इतने विस्तार से चर्चा की कि आज वह वृतांत ऐतिहासिक दृष्टि से हमारे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन गए हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों और विहारों के अनेक शिक्षक चीन में प्रसिद्ध हुए थे जैसे-काञ्चीपुरम् के बोधिधर्म। वे अध्ययन के लिए नालंदा विश्वविद्यालय गये और वहां से वे चीन चले गए थे। वे अपने साथ योग का दर्शन ले गये। चीन में उन्होंने 'ध्यान' (मनन) का प्रचार किया। जिसे बाद में चीन में 'चान्' कहा जाता है। बोधिधर्म वहां इतने प्रसिद्ध हो गये कि चीन और जापान में उनकी पूजा की जाने लगी।

बौद्ध दर्शन ने चीनी विद्वानों को आकृष्ट किया क्योंकि उनके पास पहले से ही 'कन्फ्यूशियनिज्म' नामक विकसित दर्शन था।

चौथी शताब्दी में 'वेई' वंश के राजाओं ने सत्ता संभाली। इस वंश के पहले सम्राट ने बौद्ध धर्म को राज धर्म घोषित कर दिया। इससे बौद्ध दर्शन के प्रचार को गति मिली। इस काल में हजारों संस्कृत किताबों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। संकटमय, भयानक और लम्बी यात्रा को बहादुरी से तय करते हुए वे बुद्ध की भूमि पर आए। भारत में रहकर उन्होंने

बौद्धों के शव-अवशेष तथा बौद्धधर्म पर हस्तलिखित पुस्तकों को इकट्ठा किया। विभिन्न शैक्षिक केन्द्रों में रहकर इनके विषय में पढ़ाई की।

बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ चीन में बहुत ही बड़े स्तर पर गुफाओं की खुदाई तथा मंदिरों और विहारों के निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। इन गुफाओं में कहीं चट्टानें काट कर विशालकाय मूर्त्तियां बनाई गईं तो कहीं उनके अंदर अद्‌भुत चित्रकारी की गई। इनमें से डुन-हुवांग, युन-कांग और लुंग-मेन दुनिया के प्रसिद्ध गुफा परिसर में से हैं। इनमें भारतीय प्रभाव काफी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इस सांस्कृतिक संबंध तथा विचारों के आदान-प्रदान का उत्तरदायित्व आचार्यो और भिक्षुओं के दो तरफा आवागमन पर निर्भर है।

कोरिया

कोरिया चीन के उत्तर-पूर्व में स्थित है। कोरिया को भारतीय संस्कृति के तत्त्व चीन से प्राप्त हुए थे। सबसे पहले सुन्दो नामक एक बौद्ध भिक्षु, बुद्ध की मूर्ति और सूत्र लेकर सन् 352 ई. में कोरिया पहुंचा। उसके उपरान्त सन् 384 में आचार्य मल्लानन्द कोरिया गये। कोरिया के प्योंगयांग नगर में एक भारतीय भिक्षु ने सन् 404 ई. में दो मंदिरों का निर्माण करवाया था। उसके बाद अनेक भारतीय शिक्षक कोरिया जाते रहे। वे भारत से धर्म, दर्शन, मूर्ति बनाने की कला, चित्रकला, धातुविज्ञान, आदि विषयों का ज्ञान अपने साथ लाए। ज्ञान की खोज करते-करते कोरिया से भी बहुत से विद्वान भारत आये। यहां पर उन्होंने विशेष रूप से ज्योतिष, खगोल विज्ञान, आयुर्वेद और ज्ञान के अन्य कई क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्राप्त किया। कोरिया में बने ये मंदिर और बौद्ध विहार धर्म के साथ-साथ ज्ञान के केन्द्र भी बन गये। बड़ी संख्या में बौद्ध ग्रंथों का कोरिया की भाषा में अनुवाद किया गया।

आठवीं-नवीं शताब्दी में भारत से ध्यान योग का दर्शन कोरिया पहुंचा। राजा, रानी, राजकुमार, मंत्री यहां तक कि वहां के सैनिकों ने भी वीरता और निर्भयता सीखने के लिए योग का प्रशिक्षण प्राप्त करना आरंभ कर दिया। ज्ञान के प्रति समर्पण की भावना से कोरिया के लोगों ने छः हजार खंडों में बौद्ध ग्रंथों का प्रकाशन किया। इसी तरह भारतीय लिपियाँ भी कोरिया पहुंचीं।

जापान

भारत और जापान के सांस्कृतिक संबंधों का इतिहास पन्द्रह सौ वर्ष पुराना माना जाता है लेकिन भारतीय संस्कृति के जापान में प्रवेश के लिखित प्रमाण सन् 552 से हैं। उस समय कोरिया के सम्राट ने जापानी सम्राट के लिए अनेक प्रकार की भेंट भेजी जिनमें बौद्ध मूर्त्तियां, सूत्र, पूजा में प्रयोग होने वाली वस्तुएं और उनके साथ मूर्त्तिकार, कलाकार, वास्तुकार आदि सम्मिलित थे।

जल्दी ही बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित कर दिया गया। हजारों की संख्या में लोग भिक्षु तथा भिक्षुणी बन गए।

जापान में संस्कृत को पवित्र भाषा का स्थान प्राप्त हुआ। भिक्षु संस्कृत वर्णों और मंत्रों को लिखने के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। जिस लिपि में संस्कृत मंत्र लिखे जाते थे उसे जापानी में 'शित्तन्' कहा जाता है। 'शित्तन्' 'सिद्धम्' का ही दूसरा रूप है, 'सिद्धम्' का अर्थ है ऐसी लिपि जो सिद्धि देती है।

आज भी जापानी विद्वान् संस्कृत के अध्ययन के लिए उत्सुक रहते हैं। वास्तव में बौद्ध ग्रंथों की भाषा होने के कारण, संस्कृत भारत और जापान के मध्य एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य कर रही है। सातवीं शताब्दी में राजकुमार शोतोकुताइशी के समय चीनी भाषा में अनूदित बौद्ध ग्रंथ जापान पहुंचे थे। वह इन ग्रंथों के दर्शन से बहुत प्रभावित हुए।

तिब्बत

तिब्बत हिमालय के उत्तर में बहुत ही ऊंचे पठार पर बसा है। तिब्बत के लोग बौद्ध है। माना जाता है कि तिब्बत के राजा नरदेव ने अपने एक मंत्री थोन्मी सम्भोट के साथ सोलह श्रेष्ठ विद्वानों को मगध भेजा। इन विद्वानों ने भारतीय शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय के पश्चात् थोन्मी सम्भोट कश्मीर चले गए थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भारतीय लिपि के आधार पर तिब्बत के लिए एक नयी लिपि का आविष्कार किया। आज तक तिब्बत में इसी लिपि का प्रयोग किया जाता है। इसने मंगोलिया और मंचूरिया की लिपि को भी प्रभावित किया था।

ऐसा मालूम पड़ता है कि थोन्मी सम्भोट अपने साथ भारत से अनेकों पुस्तकें ले गए। तिब्बत लौट कर थोन्मी सम्भोट ने तिब्बती लोगों के लिए नये व्याकरण की रचना की। यह पाणिनि द्वारा लिखे संस्कृत व्याकरण पर आधारित मानी जाती है। संमोट के माध्यम से आये साहित्य के प्रति राजा इतना आकर्षित हुआ कि उसने इस साहित्य के अध्ययन में चार साल बिता दिए। उसने संस्कृत से तिब्बती भाषा में अनुवाद की नींव डाली। इसके परिणामस्वरूप सातवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक निरंतर अनुवाद कार्य चलता रहा। इस प्रकार छियानवे हजार संस्कृत ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ।

पाठगत प्रश्न 21.2

1. चीन मार्ग को रेशम मार्ग क्यों कहा जाता है?

   ....

2. कुची कहां है? यह क्यों प्रसिद्ध है?

   ....

3. पहली सदी में एक ओर चीनी भाषा में खुदे हुए और दूसरी ओर खरोष्टी लिपि में प्रकृति लिखे सिक्के कहाँ प्राप्त हुए?

    ....

4. दुन हुआंग, युन कांग और लुंग-मेन क्या थे?

    ....

5. कोरिया में 'ध्यान-योग' दर्शन कब पहुंचा?

    ....

6. जापान में भारतीय संस्कृति कैसे पहुंची?

    ....

7. जापान में 'शित्तन' क्या है?

    ....

8. ईशा पश्चात् सातवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के बीच संस्कृत भाषा की कितनी पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया?

    ....

21.5 श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति

श्रीलंका

आपने पढ़ा होगा कि महाकाव्य रामायण में अयोध्या के राजा भगवान राम, सीताजी को वापस लेने श्रीलंका गए थे। यह सम्भव है कि उस समय की लंका और श्रीलंका अलग अलग हों। महाराजा अशोक ने भारत के बाहर बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अथक प्रयास किए। उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को बुद्ध के संदेशों के प्रचार कार्य के लिए श्रीलंका भेजा। उनके साथ अन्य कई विद्वान् भी गये। ऐसा कहा जाता है कि वे अपने साथ बोधगया से बोधिवृक्ष की एक शाखा भी काट कर ले गये जो वहाँ लगाई गई। उस समय श्रीलंका में देवानाम्पिय तिस्स नामक राजा था। भारत से जो लोग गए, उन्होंने मौखिक रूप से ही बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार किया। प्रायः दो सौ वर्षों तक श्रीलंका में लोगों ने महेन्द्र द्वारा सिखाए गए शास्त्रों के उच्चारण को संभाल रखा। सबसे पहले महाविहार और अभयगिरि नामक बौद्ध विहारों का निर्माण हुआ।

उस समय से आज तक श्रीलंका बौद्ध धर्म का एक सशक्त केन्द्र रहा है। श्रीलंका के लोग पालि भाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग करने लगे। श्रीलंका की संस्कृति को सुंदर बनाने में बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान है। श्रीलंका में दीपवंश और महावंश बौद्धधर्म के विख्यात स्रोत हैं।

बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय कला भी श्रीलंका पहुंची, भारतीय विषय, नृत्य चित्रकला की तकनीक शैली और तरीके, लोक गीत और कला की शैली और वास्तुकला की विधि भी यहीं से वहाँ पहुंची। श्रीलंका की चित्रकला का सबसे सुन्दर निदर्शन 'सिगीरिया' नामक गुफा विहार में मिलता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि राजा कश्यप ने 5वीं शताब्दी में इसे एक मजबूत किले के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसकी भित्तियों पर बनाये गये चित्रों का आकार प्रकार भारत की अमरावती की कला शैली में है।

म्यांमार (बर्मा)

ईसा संवत् के प्रारंभ में भारतीय संस्कृति और भारतीय लोग बर्मा पहुंचने लगे थे। म्यांमार चीन जाने वाले रास्ते में पड़ता था। अमरावती और ताम्रलिप्ति से आने वाले लोगों ने दूसरी सदी के बाद म्यांमार में बसना आरंभ कर दिया। म्यांमार में आकर बसने वाले लोगों में व्यापारी, ब्राह्मण, कलाकार, शिल्पी और अन्य लोग शामिल थे।

बर्मा में, पगान 11वीं से 13वीं सदी तक बौद्ध-संस्कृति का महान केन्द्र बना रहा। यहां के एक प्रतापी राजा का नाम अनिरुद्ध है। इन्होंने खेजेगोन पैगोडा तथा हजारों की संख्या में मंदिर बनवाये। उन्होंने पालि भाषा को विकसित किया तथा बौद्ध एवं हिन्दू धर्मग्रन्थों का अपनी पालि भाषा में अनुवाद करवाया।

बर्मा के राजदरबार पर भी भारतीय परंपरा और का गहरा प्रभाव रहा। हाल के दिनों तक यहां राज-ज्योतिषी, भविष्यवक्ता तथा आचार्य ब्राह्मण हुआ करते थे। इन्हें बर्मा में पोन्ना कहा जाता है। इनमें अधिकांश भारत के मणिपुर प्रदेश के थे। माना जाता है कि बर्मा में ये पंडित अत्यंत सक्रिय रहे। पंडित गण की प्रसिद्धि विज्ञान, चिकित्सा तथा ज्योतिष में उनके अच्छे ज्ञान के कारण थी।

थाईलैंड

सन् 1939 ई. तक थाईलैंड को स्याम नाम से ही जाना जाता था। इस देश में भारतीय संस्कृति का प्रवेश ईसा की प्रथम शताब्दी में होना शुरू हुआ। सबसे पहले यह कार्य व्यापारियों ने किया तथा उनके पश्चात् प्रचारकों और धर्माचार्यों ने इसे आगे बढ़ाया। भारतीय संस्कृति अनेक प्रकार से वहां पहुंची। वहां के राज्यों के नाम संस्कृत में रखे गये जैसे-द्वारावती, श्रीविजय, अयोध्या और सुखोदय आदि। थाईलैंड में नगरों के नाम भी भारतीयता के द्योतक हैं जैसे-कंचनपुरी के तर्ज पर कांचनबुरी, राजपुरी के समान राजबुरी और लवपुरी के समान लोबपुरी। यहां शहरों के प्राचीनबुरी, सिहबुरी जैसे नाम मिलते है जो संस्कृत भाषा के प्रभाव को दर्शाते हैं। यहां तक कि राजाराम, राजा-रानी, महाजया और चक्रवंश जैसे गलियों के नाम यहां रामायण की लोकप्रियता का साक्ष्य देते हैं।

ब्राह्मणों की मूर्त्तियाँ और बौद्ध मंदिरों का वहां पर निर्माण तीसरी-चौथी शताब्दी में आरंभ हो गया था। वहां के मंदिरों से प्राप्त होने वाली सबसे प्राचीन मूर्तियां भगवान् विष्णु की हैं।

विभिन्न समय पर थाईलैंड की राजधानी कई बार परिवर्तित हुई। जहां भी नई राजधानी बनती थी वहां भव्य मंदिरों का निर्माण किया जाता थां अयोध्या जिसे 'अयुत्थिया' कहते हैं उन्हीं में से एक है। यहां बहुत बड़े-बड़े मंदिर थे पर आज वे सब खण्डहरों के रूप में खड़े हैं परन्तु वर्तमान राजधानी बैकांक में आज भी 400 मंदिर हैं।

कम्बोडिया

चम्पा (अन्नम) और कम्बोज (कम्बोड़िया) साम्राज्यों पर भारतीय मूल के राजाओं ने शासन किया। भारत और कम्बोडिया के गहरे सांस्कृतिक संबंध का इतिहास पहली और दूसरी शताब्दी ई. पश्चात् तक जाता है। प्रथम शताब्दी से कम्बोज में भारतीय मूल के शासक कौन्डिन्य राजवंश ने शासन किया। असंख्य संस्कृत अभिलेख तथा साहित्य से हम उनके इतिहास का अनुमान लगा सकते हैं। हम शानदार मंदिरों को देखकर उनका वैभव ज्ञात कर सकते हैं।

कम्बोडिया के लोगों ने बड़े-बड़े स्मारक बनाए और उनको भारतीय महाकाव्यों और पुराणों से लेकर शिव, विष्णु, बुद्ध और अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों से सजाया। राजाओं के द्वारा इन ग्रन्थों के ऐतिहासिक घटनाओं को प्रदर्शित करने के लिए कथानकों से अनेक अंश चुने गए। चौदहवीं शताब्दी तक संस्कृत राजभाषा के पद पर आसीन रही।

राजाओं ने संस्कृत में अपनी उपाधियाँ खुदवाईं। ब्राह्मणों को सबसे ऊंचे पदों पर नियुक्त किया गया। शासन का सारा कार्य हिन्दु नियमों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार चलाया जाने लगा। मंदिरों के साथ ज्ञान केन्द्र के रूप में आश्रम खोले गए। ताम्रपुर, विक्रमपुर, ध्रुवपुर आदि नगरों के संस्कृत नाम रखे गए। आज तक यहां भारतीय महीनों के नाम-चेत्, बिसाक, जेश, आसाढ़ आदि चलते हैं। ये भारतीय नामों के ही अपभ्रष्ट उच्चारण हैं। इसी प्रकार थोड़े से उच्चारण भेद के साथ हम आज भी उनकी भाषा में हजारों शब्द देख सकते हैं।

कम्बोड़िया में स्थित आंकोरवाट का मंदिर संसार का सबसे बड़ा विष्णु मंदिर है। इस मंदिर के पांच शिखर सुमेरु पर्वत के पांच शिखर माने जाते हैं। इस मंदिर में वहां के एक राजा सूर्यवर्मन को विष्णु के रूप में मूर्तिमान किया गया है। माना जाता है कि वह अपने पुण्य-कार्यों के कारण विष्णुलोक चला गया। यह मंदिर एक वर्गमील में फैला हुआ है। इसके चारों ओर की खाई सदा पानी से भरी रहती है जो इसकी शोभा को चार चांद लगाती है। इसकी दीवारों पर रामायण और महाभारत के चित्र खोदे गये हैं। इनमें सबसे बड़ा दृश्य समुद्रमंथन अर्थात् समुद्र के मथने का है।

कम्बोडिया में यशोधरपुर में एक और भव्य मंदिर है—बाफुओन। यह ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था। इसकी दीवारों पर महाकाव्यों के चित्र खुदे हुए हैं जैसे राम-रावण के युद्ध के दृश्य, कैलाश-पर्वत पर अधिष्ठित शिव-पार्वती के दृश्य तथा कामदेव के भस्म होने का दृश्य।

वियतनाम (चम्पा)

चम्पादेश में भारतीय संस्कृति के प्रसार का कार्य भारत के व्यापारियों और राजकुमारों ने किया। वहां जा कर उन्होंने राजनीति और अर्थशास्त्र के अग्रणी के रूप में अपने को सिद्ध किया। दोनों दृष्टियों से उन्होंने वहां के नगरों के नाम इन्द्रपुर, अमरावती, विजय, कौठार, पाण्डुरंग आदि रखे।

चम्पा के लोग चम कहलाते हैं। चम लोगों ने बड़ी संख्या में हिंदु और बौद्ध मंदिरों का निर्माण किया। वे भगवान शिव, गणेश, लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती, बुद्ध तथा लोकेश्वर आदि देवताओं की पूजा किया करते थे। इन्होंने मंदिरों में अन्य मूत्तियों शिवलिंगों की भी स्थापना की। ये मंदिर भव्य थे परन्तु आज जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं।

मलेशिया

प्राचीन काल से भारत में मलेशिया के बारे में जानकारी थी। रामायण, जातक कथाओं, मिलिन्दपण्ह, शिल्पादिकरम् तथा रघुवंश नामक महाकाव्यों में मलयेशिया का उल्लेख आता है। मलेशिया के केडाह तथा वैलेस्ली आदि प्रान्तों से इस बात के प्रमाण मिले हैं कि वहां शैव धर्म प्रचलित था। यहां से कुछ ऐसी देवियों की मूर्तियां भी मिली हैं जिनके हाथ में त्रिशूल है। अन्य मूर्तियों में सातवीं और आठवीं सदी से संबंधित ग्रेनाइट का नन्दी-शीर्ष, दुर्गा-प्रतिमा तथा गणेश मूर्ति आदि विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

प्राचीन काल में मलेशिया में ब्राह्मी लिपि के परवर्ती रूप का ही प्रयोग किया जाता था। केडाह नामक स्थान से कुछ ऐसे बौद्ध ग्रंथों के अंश मिले हैं जो पुरानी तमिल से मिलती जुलती किसी लिपि में लिखे गए हैं। संस्कृत वहाँ की स्रोत भाषा रही। वहां की भाषा को शब्द देने का कार्य भी संस्कृत भाषा ने किया। स्वर्ग, रस, गुण, दण्ड, मंत्री, दोहद धीपति, लक्ष इत्यादि अनेक संस्कृत शब्द उनकी भाषा में पाये जाते हैं। हनुमान और गरुड़ अपनी अलौकिक शक्तियों के लिए मलेशिया में प्रसिद्ध थे।

भारत और मलेशिया के सांस्कृतिक संबंधों के सबसे प्राचीन प्रमाण वहां से मिले संस्कृत के शिलालेख हैं। ये चौथी पांचवीं शताब्दी की भारतीय लिपि में लिखे गये हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण लिगोर के शिलालेख को माना जाता है। यहां पर करीब पचास मंदिर मिले हैं।

इण्डोनेशिया

धार्मिक वास्तुशिल्प के क्षेत्र में इण्डोनेशिया का सबसे बड़ा शिव-मंदिर जावा द्वीप में स्थापित है। इसे प्रम्बनन कहा जाता है। यह मंदिर नवीं शताब्दी में बनाया गया था। इसके मध्य में सबसे बड़ा मंदिर शिव मंदिर है। इसके दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु के मंदिर हैं। इन तीन मन्दिरों के सामने तीन मंदिर और हैं जो तीनों देवताओं के वाहनों के मंदिर हैं। जैसे शिव के सामने नन्दी का, विष्णु के सामने गरुड़ का और ब्रह्मा के सामने हंस का मंदिर

है। इन दो पंक्तियों के बीच में दो अन्य मंदिर देवी दुर्गा तथा गणपति के हैं। इस प्रकार इन आठ मंदिरों का एक समूह बन गया है। इस समूह के चारों ओर छोटे-छोटे 240 मंदिरों की पंक्तियां हैं। यह वास्तुशिल्प का अनुपम उदाहरण है। इस मंदिर की दीवारों पर रामायण तथा कृष्ण कथा के चित्रों की जो नक्काशी की गई है, वह संसार की सबसे प्राचीन प्रस्तुतियों में से हैं।

यहां पूजा के समय संस्कृत मंत्रों का पाठ किया जाता है। बालि द्वीप से संस्कृत के ऐसे पांच सौ से अधिक सूक्त तथा श्लोक इकट्ठे किये गये हैं जो अनेक देवी-देवताओं की स्तुति में गाये जाते हैं, जैसे–शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, बुद्ध आदि। वास्तव में बालि ही एक मात्र प्रदेश है जहां हिंदू संस्कृति समृद्ध हुई और अभी तक अस्तित्व में है। जबकि समस्त (पुराने लोगों) ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, 'बालि' फिर भी हिंदू संस्कृति और धर्म का ही अनुसरण करता है।

इण्डोनेशिया के जावा द्वीप से भारी संख्या में पाण्डुलिपियां मिली हैं। ये प्राय: ताड़पत्रों पर जावा की प्राचीन लिपि 'कावि' में लिखी गयी हैं। कावि लिपि का आधार भी ब्राह्मी लिपि ही है। इन ग्रंथों में प्राय: संस्कृत में श्लोक तथा 'कावि' भाषा में उन की टीकाएँ लिखी हुई हैं। यदि शैव धर्म तथा दर्शन के ग्रंथों पर विचार किया जाये तो उनमें 'भुवनकोश' सबसे बड़ा और सबसे पुराना ग्रन्थ है। इसमें 525 श्लोक संस्कृत में हैं तथा एक टीका इन श्लोकों के अर्थ को बताते हुए लिखी गई है।

दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति तथा धर्म का जितना प्रभाव हुआ उतना शायद संसार के किसी अन्य राज्य पर नहीं पड़ा। सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा भारतीय लिपि में संस्कृत शिलालेख सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। ये शिलालेख सभी राज्यों में प्राप्त होते हैं। इन शिलालेखों तथा साहित्य के अध्ययन से तथा अन्य साहित्य से यहां की भाषा, धर्म राजनीति, सामाजिक संस्थानों पर भारत का बहुत प्रभाव दिखता है।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र'–ये जाति विभाजन तथा वर्ण व्यवस्था को भी जानते थे। लेकिन यह व्यवस्था भारत के समान कठोर नहीं थी। ऋग्वेद के काल में जैसी कर्म के आधार पर विभाजित व्यवस्था थी वैसी ही व्यवस्था यहाँ पर थी। जन्म के आधार पर बालि में वर्णव्यवस्था नहीं है। विवाह के रीति-रिवाज भी प्राय: एक जैसे ही हैं।

मनोरंजन का बहुत लोकप्रिय साधन (भारतीय कठपुतली के प्रदर्शन जैसा) छाया नाटक 'वायुंग' हैं– जिसकी कहानियां मुख्यरूप से रामायण और महाभारत से ली जाती हैं और जो दक्षिण पूर्व एशिया में अभी भी बहुत लोकप्रिय है।

पाठगत प्रश्न 21.3

1. श्रीलंका के प्रथम दो मठों के नाम बतायें।

    ....

2. बौद्ध धर्म श्रीलंका कैसे पहुँचा?

3. कौन सी भाषा श्रीलंका की साहित्य की भाषा बनी?

4. 'अंकोर वाट' क्या है?

5. 'अंकोर वाट' के पांच शिखर क्या कहलाते हैं?

6. 'अंकोर वाट' में क्या चित्रित है और क्यों?

7. अंकोर वाट मंदिर किसका प्रतिनिधित्व करता है?

8. 'अंकोर वाट' की दीवारों पर क्या खुदा हुआ है?

9. 'अंकोर वाट' की दीवारों पर कौन सा सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्य खुदा हुआ है?

10. 'बाफुओन' पर क्या सजावट की गई है?

11. वियतनाम (चम्पा) के कुछ शहरों के नाम बताइये जिनके नाम भारतीय संस्कृति पर आधारित हैं।

12. मलेशिया में शैवधर्म के प्रमाण कहां पाये गए?

13. मलेशिया में कौन सी महत्वपूर्ण आकृतियाँ खुदाई में प्राप्त हुईं?

14. संस्कृत के उन शब्दों को बताइए जो मलेशिया की भाषा में पाये जाते हैं।

15. चौथी तथा पांचवीं शताब्दी में मलेशिया में कौन से सबसे महत्त्वपूर्ण शिलालेख हैं?

16. 'लिगोर' में कितने मंदिर पाये गए?

....

17. 'प्रंबनन' क्या है?

....

18. शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा के तीनों मंदिरों के सामने क्या बना हुआ है?

....

19. इण्डोनेशिया के जावा द्वीप में कितने मंदिर हैं?

....

20. इण्डोनेशिया के मंदिरों की दीवारों पर कौन सी कहानियां खुदी हुई हैं?

....

21. इण्डोनेशिया के बाली द्वीप में क्या पाया गया?

....

21.6 भारतीय संस्कृति और अरब सभ्यता के संबंध

स्थल और समुद्र-मार्ग के द्वारा पश्चिम एशिया से भारत का संपर्क प्राचीन काल से चला आ रहा है। इन दो संस्कृति-क्षेत्रों (उस समय राष्ट्र का विचार विकसित नहीं हुआ था) के बीच संबंध, पश्चिम एशिया में इस्लामी सभ्यता के उदय और प्रसार के साथ और गहरे हुए। इस संबंध के आर्थिक-पक्ष के विषय में 9वीं सदी के मध्य के अरब तथा अन्य व्यापारी यात्रियों जैसे–सौदागर सुलेमान, अल-मसूदी, इब्न हौकुल, अल इदरिसी आदि के वृतांतों से जानकारी मिलती है। इन यात्रा-वृतांतों के अनुसार इन दो संस्कृति-क्षेत्रों के बीच व्यापारिक आदान-प्रदान का संबंध अत्यंत समृद्ध था। बहरहाल, संस्कृति के क्षेत्र में आठवीं सदी या इससे भी पहले से सक्रिय मेल-जोल के प्रमाण मिले हैं।

भारत और पश्चिम एशिया के बीच सार्थक सांस्कृतिक मेल-जोल के प्रमाण बहुत से क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं। हम यहां पढ़ेंगे कि कैसे इस संबंध के फलस्वरूप इस्लामी-जगत समृद्ध हुआ। खगोलविज्ञान के क्षेत्र के दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'ब्रह्म-स्फुट-सिद्धांत' जिसे अरब जगत में 'सिंधिन' के नाम से जानते हैं, तथा 'खण्डनखाध' (अरकंद नाम से प्रसिद्ध) सिन्ध के दूतावासों के माध्यम से बगदाद पहुंचे। इन दूतावासों के भारतीय विद्वानों की मदद से इन ग्रंथों का अरबी में अनुवाद अल-फजारी ने किया। संभवतः अल-फजारी ने याकूब-इन-तारीक की भी मदद की थी। बाद के समय में आर्यभट्ट और वराहमिहिर कृत खगोलविज्ञान के ग्रंथों का भी अरब-जगत में अध्ययन हुआ और इन्हें अरब के वैज्ञानिक साहित्य में शामिल कर लिया गया।

अरब सभ्यता को भारत का एक अन्य महत्त्वपूर्ण योगदान गणित था। अरब के विद्वानों ने गणित शास्त्र को 'हिन्दिसा' (भारत से संबंधित) कहकर भारत के प्रति अपना ऋण स्वीकार किया है। भारतीय गणित अरबी विद्वानों के अध्ययन और विचार-विमर्श का प्रिय विषय बन गया। भारतीय गणित की लोकप्रियता अन्य विद्वानों के अतिरिक्त अलकिन्दी के ग्रंथों के कारण ज्यादा बढ़ी। अरबों ने बहुत जल्दी जान लिया कि शून्य की अवधारणा से सम्पन्न भारतीय दशमिक-प्रणाली अत्यंत क्रांतिकारी है। सीरिया के एक तत्कालीन विद्वान ने शून्य के साथ दाशमिक-प्रणाली के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा था–''मैं मात्र इतना भर कहना चाहता हूं कि यह परिगणना नौ अंकों के सहारे होती है। इसलिए जो यह विश्वास करते हैं कि क्योंकि वे ग्रीक भाषा बोलते हैं, उन्होंने विज्ञान की सरहदों को छू लिया है, यदि इन बातों को जानें तो उन्हें पता लगेगा कि दूसरे लोग भी हैं जिन्हें कुछ आता है।''

10वीं से 13वीं सदी के अनेक अरबी स्रोतों से पता चलता है कि चिकित्सा और औषधि -विज्ञान के बहुत से भारतीय ग्रंथों का खलिफा हारून अल-रशीद के निर्देश पर अरबी में अनुवाद हुआ। खलीफा हारुन अल-रशिद् सन् 786 ई. से सन् 809 ई. तक बगदाद का शासक रहा। उदाहरण के तौर पर सुश्रुत संहिता का अनुवाद अरबी में एक भारतीय ने किया जिसे मंख कहा जाता है।

खगोलविज्ञान, ज्योतिष-शास्त्र, गणित शास्त्र तथा औषधि-विज्ञान आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त अरबों ने विभिन्न विषयों के भारतीय ग्रंथों के साथ-साथ भारतीय सभ्यता-संस्कृति के विभिन्न विषयों की भी प्रशंसा की। उन्होंने भारतीय ग्रंथों का अनुवाद भी कराया, लेकिन वे अनुवाद से संतुष्ट नहीं हुए और अनूदित ग्रंथों पर आधारित अथवा उनसे व्युत्पन्न मौलिक ग्रंथों की भी उन्होंने रचना की। अरबों ने भारतीय ज्ञान के जिन अन्य क्षेत्रों का अध्ययन किया उसमें सांप और जहर के विषय में लिखे ग्रंथ, पशु-चिकित्सा से संबंधित ग्रंथ, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति तथा युद्ध-कला पर लिखित ग्रंथ भी शामिल हैं। इस प्रक्रिया में अरब की शब्दावली भी अत्यंत समृद्ध हुई। मिसाल के तौर पर अरब लोग जहाजरानी में अत्यंत अग्रणी थे परन्तु आप इस क्षेत्र के ऐसे अनेक अरबी शब्दों को पहचान सकते है जो भारतीय मूल के हैं, जैसे, 'हूर्त्ति' (छोटी नाव) जो होरी से बना है तथा 'बनवी' जो बनिया या वणिक् से बना है, एवं 'डोनीज' जो डोंगी से बना है आदि।

21.7 भारत के रोम से संबंध

दक्षिण भारत के उत्पादों का पश्चिम में एकाधिकार था क्योंकि उनकी वहां बहुत मांग थी। वास्तव में ईसा युग की प्रथम तीन शताब्दियों में भारत का पश्चिम के साथ लाभप्रद समुद्री व्यापार हुआ जिनमें रोम साम्राज्य प्रमुख था। रोम भारतीय सामान का सर्वोत्तम ग्राहक था। यह व्यापार दक्षिण भारत के साथ हुआ जो कोयम्बटूर और मदुरई में मिले रोम के सिक्कों से सिद्ध होता है। रोम में काली मिर्च, पान, मसालों और इत्रों की बहुत मांग थी। बहुमूल्य पत्थर जैसे नगीने, हीरे, पन्ने, माणिक्य और मोती, हाथी दांत, रेशम एवं मलमल के वस्त्र वहां बहुत पसंद किये जाते थे। रोम के साथ व्यापार से भारत में सोना आता था और भारत

को इस व्यापार से बहुत लाभ होता था तथा उस समय कुषाण साम्राज्य को आमदनी के रूप में स्थायी स्वर्ण मुद्रा मिलती थी। तमिल राजाओं ने युद्ध स्थल पर अपने शिविरों की रक्षा के लिऐ और मदुरै के नगरद्वार की पहरेदारी के लिए भी यवन नियुक्त किये थे। प्राचीन भारत में यवन शब्द पश्चिम एशिया तथा भूमध्यसागरीय क्षेत्र के लोगों के लिए प्रचलित था और इसमें रोमवासी तथा यूनानी लोग भी शामिल थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि 'यवन' अंगरक्षकों में कुछ रोमवासी भी हो सकते थे।

इस समय तक कावेरीपत्तनम विदेशी व्यापार का एक बहुत महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। कावेरीपत्तनम में तट पर ऊंचे मंच, गोदाम और भंडार गृह जहाजों से उतरे माल को रखने के लिए बनाये गये। इन वस्तुओं की चुंगी भुगतान के बाद इन पर चोलों की बाघ के चिह्नवाली मोहर लगाई जाती थी। उसके बाद माल व्यापारियों के भंडारगृहों (पत्तनप्पलाई) में भेजा जाता था। निकट ही यवन व्यापारियों के आवास और विभिन्न भाषाएं बोलने वाले विदेशी व्यापारियों के रहने के स्थान होते थे। वहीं एक बड़े बाजार में उनकी जरूरत का हर सामान उपलब्ध होता था। यहां फूलों और इत्रों के सुगंधित लेप और चूर्ण बनाने वाले, दर्जी जो सिल्क, ऊनी और सूती वस्त्रों पर काम करते थे, चंदन, मूंगे, सोने, मोती और बहुमूल्य नगों के व्यापारी, अनाज के व्यापारी, धोबी, मछली और नमक आदि के बेचने वाले, मोची, सुनार, चित्रकार, मूर्तिकार, लुहार और खिलौने बनाने वाले सब मिल जाते थे। यहां समुद्र पार सुदूर देशों से आये घोड़े भी बाजार में बेचने के लिए लाए जाते थे।

इनमें अधिकांश वस्तुओं को निर्यात के लिए एकत्र किया जाता था। प्लिनी के अनुसार भारत के निर्यातों में काली मिर्च और अदरक भी शामिल थे। इनका वास्तविक मूल्य से सौ गुना ज्यादा दाम मिलता था। इसके अतिरिक्त भारतीय इत्र, मसालों और सुगंधों आदि वस्तुओं की रोम में बहुत अधिक खपत थी।

प्राचीन काल में विदेशों के साथ भारत के व्यापार संबंध कितने महत्त्वपूर्ण थे इसका अनुमान आप भारतीय राजाओं द्वारा भेजे जाने वाले और उनसे मिलने आने वाले राजदूतों की संख्या से लगा सकते हैं। एक पांड्य (Pandya) राजा ने ईसा पूर्व पहली शताब्दी में रोम के सम्राट अगस्टस के पास राजदूत भेजा था। ईसा के बाद सन् 99 में भी ट्राय के लिए राजदूत भेजे गये। क्लाउडियस, ट्रैजन, एंटोनमिस, पूइस, इंस्तिमान तथा अन्य राजदूतों ने विभिन्न भारतीय राजदरबारों की शोभा बढ़ायी।

रोम के साथ व्यापार इतना अधिक था कि इसकी गति को निर्बाध बनाने के लिए पश्चिमी तट पर सोपारा और बेरीगाज (भड़ौच) जैसे बंदरगाह बने, जबकि कोरोमंडल तट से 'सुनहरे कैरसोनीस' (सुवर्णभूमि) और सुनहरे क्रीस (सुवर्ण द्वीप) के साथ व्यापार होता था। चोल राजाओं ने अपने बंदरगाहों पर प्रकाशस्तंभ लगाये जो रात में तीव्र रोशनी देकर बंदरगाहों पर जहाजों का मार्गदर्शन करते थे। पांडेचेरी के समीप आर्कमेडू नामक स्थान पर इटली की अरेटाइन नाम से प्रसिद्ध बर्तन बनाने की कला के कुछ नमूने जिन पर इटली के बर्तनसाज की मुहर भी है, तथा रोमन लैंप के अवशेष भी मिले हैं।

आंध्र क्षेत्र से भी विदेशी व्यापार की निशानियां मिलती हैं। यहां के कुछ बंदरगाह और आसपास के नगर भी व्यापार में सहायता प्रदान करते थे। अत: पैठन (प्रतिस्थान) से पत्थर तगर, सूती मलमल और अन्य वस्त्र विदेशों को जहाज से भेजे जाते थे। आंध्र के राजा यज्ञश्री ने राज्य के समुद्री व्यापार के प्रतीक रूप में जहाज-मुद्रित दुर्लभ सिक्के चलाये।

21.8 जहाज और विदेशी व्यापार

विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार में व्यापार एक महत्त्वपूर्ण माध्यम रहा। प्राचीन समय से ही हमारे भारतीय जहाज विशाल सागर को पार कर विदेशी तटों पर पहुंचे। उन्होंने वहां बहुत से देशों के साथ व्यापारिक संबंध बनाये। पड़ोसी देशों के साहित्य, कला और शिल्प पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता की छाप साफ-साफ दिखायी देती है। यहां तक कि सुदूर अमरीकी तटों सूरीनाम और कैरेबियन द्वीपों पर भी भारतीय संस्कृति के स्मृति चिह्न मिलते हैं।

समुद्रगुप्त (सन् 340-सन् 380) के पास न केवल शक्तिशाली सेना थी बल्कि सशक्त जलसेना भी थी। गंगा-पार प्रायद्वीप में तथा मलय के संग्रहालयों में ऐसे कुछ शिलालेख मिले हैं जो गुप्तकाल में भारतीय नाविकों के क्रिया कलापों को प्रमाणित करते हैं। हर्षवर्धन के (AD 606-647) के काल में भारत की यात्रा करने वाले ह्यूनसांग ने भी उस समय के भारत के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। चोल शासकों ने एक मजबूत जलसेना बनाई थी और समुद्र पार के देशों पर आक्रमण भी किए थे।

पुर्तगालियों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि कुछ भारतीय व्यापारी पचास जहाजों तक के स्वामी थे। उनके अनुसार भारतीय व्यापारियों के पास निजी जहाजों का होना आम बात थी।

पश्चिम में विभिन्न स्थानों पर मिली हड़प्पा-सभ्यता से संबंधित वस्तुएं सिद्ध करती हैं कि ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में मैसोपोटामिया और मिस्र सभ्यताओं के साथ भारत के व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध थे। यही नहीं, प्राचीन यूनान, रोम और फारस के साथ हमारे देश के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक विचारों का खूब आदान-प्रादान हुआ। रोम साम्राज्य के साथ व्यापार के फूलने-फूलने का वर्णन रोम के इतिहासकार प्लिनी (Pliny) ने किया जिसे रोम की धन-संपदा का भारत में जाने का दुख था।

21.9 इस संपर्क से भारतीयों ने क्या सीखा

भारतीयों ने विदेशी लोगों से अनेक नई चीजें सीखीं उदाहरणार्थ-ग्रीस और रोम से स्वर्ण सिक्कों की ढलाई, चीन से रेशम बनाने की कला और इण्डोनेशिया से पान को उगाना सीखा। उन्होंने विदेशियों से व्यापार संबंध स्थापित किये। विभिन्न देशों की कला और संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ा लेकिन दूसरे देशों में भी इसका प्रतिबिम्ब देखने को मिला।

पाठगत प्रश्न 21.4

1. भारत और अरब के आर्थिक संबंध कितने पुराने है?

   ....

2. अरब के कुछ प्रसिद्ध यात्रियों के नाम लिखे।

   ....

3. भारत ने खगोल विज्ञान के दो कौन से ग्रंथ अरब को दिए? नाम बतायें।

   ....

4. भारत का गणित के क्षेत्र में अरब को क्या योगदान था?

   ....

5. 'सुश्रुत-संहिता' का अरबी भाषा में किसने अनुवाद किया?

   ....

6. चिकित्सा और औषधि-विज्ञान पर भारतीय ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किसके प्रयास पर किया गया? नाम लिखें।

   ....

7. भारतीय ज्ञान के किस-किस क्षेत्र में अरबी लोगों ने अध्ययन किया?

   ....

8. रोमन सिक्के भारत में कहां पर मिले?

   ....

9. अरब में किन चीजों की ज्यादा मांग थी?

   ....

10. कुषाण साम्राज्य में स्थायी स्वर्ण मुद्रा को कैसे स्थापित किया गया?

    ....

11. 'यवन' कौन थे?

    ....

12. प्राचीन भारत में यवनों का क्या कार्य था?

    ....

13. इटली की अरेटाइन नाम से प्रसिद्ध बर्तन बनाने वाली कला के नमूने भारत में कहां प्राप्त हुए?

....

14. आंध्र प्रदेश के किस राजा ने राज्य के समुद्री व्यापार के प्रतीक रूप में जहाज मुद्रित दुर्लभ सिक्के चलाये? नाम बतायें।

....

आपने क्या सीखा

- भारतीय संस्कृति का विश्व के अनेक भागों में कई माध्यमों से प्रसार हुआ।
- भारतीय विश्वविद्यालय अपनी शिक्षा की गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध थे और उन्होंने कई देशों के छात्रों को आकर्षित किया। इन छात्रों ने भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार करने में एंजेट की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।
- संस्कृत और बौद्ध धर्म के ग्रंथों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया। ये ग्रंथ भी भारतीय संस्कृति के विदेशों में प्रसार का एक प्रमुख माध्यम बने।
- जिन देशों में भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रसार हुआ वहां बहुत से बौद्धमठ तथा मंदिर बनाए गए।
- भारतीय कला शैलियों को बहुत देशों के कलाकारों ने अपनाया।
- भारत के महाकाव्य बहुत देशों में प्रसिद्ध हैं। रामायण और महाभारत महाकाव्य, दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में सुप्रसिद्ध महाकाव्य हैं।
- श्रीलंका बौद्ध धर्म को स्वीकार करने वाला प्रथम देश था।
- भारतीय लिपि ब्राह्मी दक्षिण एशियाई देशों में बहुत सी लिपियों के लिए मानक बनी।
- इन देशों में प्राप्त बहुत से शिलालेख भारत और एशियाई देशों के बीच सांस्कृतिक संबंध के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य हैं।
- बर्मा, थाइलैंड, श्रीलंका और कम्बोडिया आदि देशों में आज भी बौद्ध धर्म जीवन्त रूप में विद्यमान है।
- अरब सभ्यता को गणित के रूप में भारत का महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध हुआ।

पाठांत प्रश्न

1. विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के प्रमुख माध्यम क्या थे?

2. विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिए प्राचीन विश्वविद्यालयों की क्या भूमिका थी?
3. पूर्व एशिया के देशों में बौद्ध धर्म ''शांति धर्म'' के रूप में कैसे पहुंचा?
4. थाईलैंड में भारतीय संस्कृति पर टिप्पणी लिखें।
5. इण्डोनेशिया के धार्मिक स्थापत्य का वर्णन करें।
6. रोम साम्राज्य के साथ भारतीय व्यापार के संबंधों का संक्षेप में विवरण लिखे।
7. प्राचीन भारत की समुद्री तथा विदेशी व्यापार तक गहरी पहुँच थी। विवेचन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

21.1 1. व्यापारी, शिक्षक और धर्मप्रचारक।

2. नालंदा और वल्लभी विश्वविद्यालय।
3. तारानाथ, तिब्बती विद्वान।
4. कश्यप मातंग और धर्मरक्षित।
5. सम्राट के अनुरोध पर वह संस्कृत के ग्रन्थों को चीनी भाषा में अनुवाद करने गए।
6. जो लोग भारत छोड़कर यूरोप भ्रमण पर गये या वहाँ बस गए, वे ही भारतीय संस्कृति के विदेशों में प्रचारदूत बने।
7. जो लोग, भारत से यूरोप में घूमे और वहीं व्यवस्थित हो गए या रहने लगे वे विदेश में भारतीय संस्कृति के राजदूत बने।

21.2 1. क्योंकि चीन का मुख्य व्यापार मूल्यवान रेशम था!

2. कुची मध्य एशिया में था। यह भारतीय संस्कृति का प्रसिद्ध केन्द्र था। यहां रेशम मार्ग द्विभाजित होता था।
3. खोतान, ओयसिस साम्राज्य।
4. संसार के सुप्रसिद्ध गुफा परिसर।
5. ईसा पश्चात् आठवीं और नौवीं शताब्दी के मध्य में।
6. भारतीय संस्कृति जापान में कोरिया के माध्यम से पहुंची। सन् 552 में कोरिया के सम्राट ने जापानी सम्राट के लिए अनेक प्रकार की भेंट भेजी जिनमें बौद्ध मूर्तिया, सूत्र, पूजा के लिए सामाग्री, कलाकार, चित्रकार मूर्तिकार तथा वास्तुकार भी सम्मिलित थे।

7. जिस लिपि में संस्कृत मंत्र लिखे जाते हैं उसे जापानी भाषा में 'शित्तन' कहते हैं? शित्तन सिद्धम् का ही दूसरा रूप है।

8. 96,000 संस्कृत ग्रंथ

21.3 1. महाविहार और अभयगिरि

2. ये अशोक थे जिन्होंने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को विद्वानों के साथ श्रीलंका भेजा। बोधगया से बोधिवृक्ष की एक शाखा को वहां पर लगा दिया गया।

3. पालि।

4. यह विष्णु का आवास माना जाता है।

5. वे सुमेरु पर्वत के पांच शिखर/चोटियां कहलाती हैं।

6. राजा सूर्यवर्मन को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। उसने अपने प्रशंसनीय कार्यों से स्वर्ग में स्थान प्राप्त किया था।

7. यह एक वर्गमील के अन्दर बना हुआ है और इसके चारों ओर खाई है जो इसकी भव्यता को चार चांद लगा देती है।

8. रामायण और महाभारत के दृश्य इस मन्दिर की दीवारों पर खुदवाए गए।

9. समुद्र-मंथन का दृश्य।

10. राम और रावण, कैलाश पर्वत पर शिव-पार्वती तथा कामदेव के विनाश का दृश्य।

11. इन्द्रपुर, अमरावती, विजय, कौठार, पाण्डुरंग।

12. केदाह में और वेल्जली प्रान्त में।

13. त्रिशुल के साथ स्त्री आकृति, नन्दी का सिर, दुर्गा की मूर्ति, गणेश और शिवलिंग।

14. स्वर्ग, रस, गुण, दण्ड, मंत्र, धीपति, लक्ष आदि कुछ शब्द है।

15. लिगोर से अति महत्त्वपूर्ण शिलालेख।

16. पचास मंदिरों से ज्यादा।

17. जावा द्वीप में सबसे विशाल शिव मंदिर प्रम्बनन कहलाता है।

18. शिव, विष्णु और ब्रह्मा के वाहनों के मंदिर।

19. 240 छोटे मन्दिरों से घिरे हुए आठ विशाल मन्दिर।

20. रामायण और कृष्ण।

21. शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश बुद्ध और खोजे गए अन्य देवी-देवताओं के पांच सौ से ज्यादा स्तुतिगान, स्तोत्र खोजे गए।

21.4 1. यह नौवीं/नवमीं सदी में आरंभ हुआ।

2. सौदागर सुलेमान, अल-मसूदी, इब्न हाकुल, अल-इदरीसी।

3. (अ) ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त – अरब में सिन्धिन कहते हैं।

   (ब) खण्डखाद्य अरकन्द नाम से जाना जाता है।

4. दशमलव प्रणाली के साथ इसकी शून्य अवधारणा।

5. मंख।

6. खलीफा हारुन-अल-रशीद।

7. सर्प, विष, पशु-चिकित्सा पर ग्रन्थ तथा तर्कशास्त्र, दर्शन, नीतिशास्त्र राजनीति, तथा युद्ध विज्ञान पर पुस्तकें।

8. कोयम्बटूर और मदुरै में।

9. काली मिर्च, पान, मसाले, सुगंधित इत्र, बहुमूल्य नगीने जैसे बेरिल, जेम, हीरा, रूबी, माणिक्य मोती, हाथीदांत, रेशम, मलमल आदि।

10. व्यापार में रोम से भारत में सोना लाया गया। इससे कुषण साम्राज्य में स्थायी स्वर्ण मुद्रा कोष स्थापित किया गया।

11. पश्चिमी एशिया और भूमध्यसागरीय क्षेत्र के लोगों के लिए था। इसमें ग्रीक और रोम के लोग भी थे।

12. युद्ध क्षेत्र पर तम्बुओं की पहरेदारी, और मदुराई के द्वारों की सुरक्षा।

13. पांडिचेरी के निकट अरिकामेडू स्थल पर।

14. यज्ञश्री।